Introduction

**प्राक्कथन** : ---

भारतीय काव्य-मीमांसा में साहित्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। हमारे यहाँ साहित्य और काव्य शब्द समानार्थक माने गये हैं। तभी तो "काव्येषु रम्यं नाटकम्" कहा गया। अभिप्राय यह कि साहित्यकार और कवि एक ही हैं। पाश्चात्य काव्य मीमांसा में काव्य की गणना कला के अंतर्गत हुई है, परंतु हमारे यहाँ काव्य को कला से बहुत ही ऊपर रखा गया है। चौंसठ कलाओं में काव्यकला अंतर्निहित नहीं है। काव्य का आनंद सामान्य कलाओं के मनोविनोद और मनोरंजन से नितांत अलग और दिव्य कोटि का है। काव्यानंद और ब्रह्मानंद समान है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "कविता क्या है ?" नामक निबंध में कहा है कि जैसे आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, ठीक उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है और इस रसदशा की अवस्था में कवि की वाणी जो शब्द-विधान करती है, वह कविता है। इसका अर्थ यह हुआ कि काव्य का निर्माण हृदय की मुक्तावस्था का परिणाम

है। अतः मुक्त हृदय व्यक्ति ही कवि पद का अधिकारी होता है। जिसका मन सांसारिक रागद्वेषों, मित्रता-शत्रुता, पूर्वाग्रहों से आबद्ध हो वह कवि कैसे हो सकता है ? कदाचित इसीलिए सुमित्रानंदन पंत जी ने कविता को परिपूर्ण क्षणों की वाणी कहा है।

अतः हमारे यहाँ कवि को बहुत ऊँचा दरज्जा दिया गया है। उसे ब्रह्मा और ऋषि कहा गया है। मनुष्य के पास नज़र होती है, ऋषि के पास दृष्टि। नज़र मनुष्य को पहचानती है, दृष्टि युग को। कहा भी गया है --"अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः", अर्थात् इस अपार काव्य-संसार में कवि ही एकमात्र प्रजापति है।

ब्रह्मा सृष्टि की रचना करता है। कवि या साहित्यकार भी एक नयी सृष्टि की रचना करता है। शास्त्र सत्य कथन करता है, परंतु कवि या साहित्यकार का सत्य सदैव "शिवम्" एवं "सुंदरम्" से समन्वित रहता है। अतः इस सत्य का विशेष महत्व है। गुजराती के एक कवि की काव्यपंक्ति है-"हुं मानवी मानव थाऊँ तो घणुं" - और मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने का कार्य साहित्य द्वारा संपन्न होता है। साहित्य सभ्यता और संस्कृति का निर्माण करता है। भारतीय संस्कृति के गुणगान विश्व में हो रहे हैं, इसके पीछे उसके महान साहित्य की विरासत कारणभूत है। अतः सभी देशकालों में साहित्य का स्थान सर्वोपरि रहा है, और सर्वोपरि रहेगा। कुछ स्वयं को बहुत बौद्धिक और वैज्ञानिक बुद्धि-संपन्न समझने वाले लोग इधर कहते सुने गये हैं कि यह तो विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है, इसमें भला साहित्य-वाहित्य की क्या जरूरत है ? उन मूढ़मति अर्थानुरागियों को, शुक्ल जी के शब्दों में "अर्थियों को" कौन समझावे कि मनुष्य केवल मस्तिष्क नहीं है, मनुष्य केवल बुद्धि नहीं है ; मनुष्य के मन और आत्मा भी है। इस मन और आत्मा को भी पोषण चाहिए और यह पोषण कहाँ से आता है ? मनुष्य के मन और आत्मा की पुष्टि और तुष्टि साहित्य द्वारा ही होती है। अतः कैसा भी विज्ञान युग क्यों न आवे, कैसा भी यंत्रयुग क्यों न आवे, उसे साहित्य की आवश्यकता तो

रहेगी ही। बल्कि ज्यों-ज्यों मनुष्य बुद्धिवादी होता जाएगा उसके मानसिक तनाव बढ़ते जायेंगे और इन मानसिक तनावों से मुक्ति सत् साहित्य ही दिला सकता है।

यह बातें तो अब कुछ-कुछ समझ में आ रही हैं परंतु उसे दैवयोग समझिए, संस्कार समझिए, नियति समझिए पर अपनी शिक्षा के प्रारंभिक दिनों से ही अन्य विषयों की अपेक्षा भाषा-साहित्य के विषयों के प्रति सविशेष आकृष्ट रही। मेरे पिता नवसुभाई हाई स्कूल में शिक्षक और आचार्य रहे। महात्मा गाँधी की पीढ़ी को न केवल उन्होंने देखा है, अपितु उसके संस्कारों को, उसकी प्रवृत्तियों को आत्मसात भी किया है। अतः आदिवासी होते हुए भी उनका मन गाँधी-प्रवृत्तियों में शुरू से ही रम गया था। हिन्दी का प्रचार-प्रसार भी गांधीयुग की एक प्रवृत्ति थी। हिन्दी के प्रचार-प्रसार को गांधी का ही कार्य माना जाता था, अतः मेरे पिता भी खादी और गांधी के रंग में, और उसी उपक्रम में हिन्दी प्रेम के रंग में पूर्णतया रंग गये। बहुत संभव है कि पिता के संस्कार मुझमें किसी सीमा तक संक्रमित हुए हों। फलतः प्राथमिक और हाईस्कूल शिक्षा के दौर से ही हिन्दी भाषा और साहित्य, तथा उसके साहित्यकारों के प्रति अनुराग भक्ति की सीमा तक मैं स्वयं में पा रही हूँ।

अतः हाईस्कूल के उपरांत बी.ए. तथा एम.ए. में मैंने हिन्दी साहित्य को ही मुख्य विषय के रूप में रखा और दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी से क्रमशः सन् १९९३ तथा सन् १९९५ में उक्त उपाधियों को प्राप्त किया। सन् १९९७ में दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय से ही बी.एड. की उपाधि प्रथम कक्षा के साथ संप्राप्त की। इसके उपरांत पी-एच. डी. की पूर्व तैयारी के लिए मैं साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन में लग गई। अभी तक का अध्ययन, साहित्य में गहरी दिलचस्पी रहते हुए भी, कुछ हद तक परीक्षालक्षी था। अब मैं सचमुच में साहित्य की विद्यार्थिनी बनना चाहती थी। कहानी-साहित्य में शुरू से ही गहरी रूचि थी, अतः मेरे पिताश्री के हाईस्कूल के पुस्तकालय में जो भी कहानी संग्रह हाथ लगे पढ़ती गई।

इस प्रकार मैंने १५०-२०० कहानियों को पढ़ डाला। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानी-पत्रिका "हंस" की मैं नियमित पाठिका रही हूँ। इन सब कारणों से कहानियों के प्रति कुछ लगाव-सा हो गया।

इस बीच एक अजीब और सुखद संयोग मेरे जीवन में घटित हुआ। महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी में शैक्षणिक पदों के कुछ रिक्त स्थानों के लिए विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी। उसमें हिन्दी विषय के अंतर्गत दो व्याख्याताओं के पद अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित थे। मैंने बिलकुल अनासक्त भाव से अपना आवेदनपत्र प्रेषित कर दिया था। ऐसे ही सहज और अनासक्त भाव से सन् १९९८ में मैं साक्षात्कार हेतु बड़ौदा आई और मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मुझे ज्ञात हुआ कि एक पद पर मेरा चयन हो गया है। नवम्बर सन् १९९८ में हिन्दी के व्याख्याता पद पर मेरी नियुक्ति हुई और तब से मैं विभाग में उसी पद पर कार्यरत हूँ। पी-एच.डी. करने का विचार तो मन में अंकुरित था ही, यहाँ आकर उस हेतु सुयोग प्राप्त हो गया। मैंने अपनी इच्छा हमारे पूर्वविभागाध्यक्ष प्रो. पारूकान्त देसाई के सम्मुख प्रस्तुत की। उन्होंने विभाग में जो मार्गदर्शक हैं उनके नाम बताये। डॉ. भगवानदास कहार साहब देसाई साहब के पार्श्ववर्ती कक्ष में बैठते हैं अतः " दूरस्थ किम् " न्याय से सर्वप्रथम मैंने प्रस्ताव उनके सम्मुख रखा और कृपापूर्वक उन्होंने मेरे प्रस्ताव पर अपनी संमति की मोहर लगा दी और कहानी-साहित्य के प्रति मेरी विशेष रूचि को लक्षित करते हुए उन्होंने मुझे कहानी साहित्य पर ही विषय दिया--"प्रेमचंद तथा शैलेश मटियानी की कहानियों में निरूपित दलित जीवन का चित्रण।" फरवरी १९९९ में पंजीकरण की विधि भी संपन्न हो गई और यायावरी-अध्ययन के स्थान पर एक सुनिश्चित दिशा में अध्ययन-अनुशीलन यात्रा का श्रीगणेश हो गया।

प्रेमचंद शुरू से ही मेरे प्रिय लेखक रहे हैं। प्रेमचंद की कहानियों में मानव-जीवन, विशेषतः उत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन, का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है। भारतीय जीवन की सही तस्वीर प्रेमचंद की कहानियों

में मिलती है। विश्वकहानी साहित्य में हम उनको मोपांसां और चेखव के समकक्ष रख सकते हैं। उनकी "बड़े घर की बेटी ", "नमक का दारोगा ", "पंच परमेश्वर " , "ईदगाह ", "मैकू ", "बेटों वाली विधवा ", "ठाकुर का कुँआ ", "दो बैलों की कथा ", "पूस की रात ", "सद्गति ", "सुजान भगत ", "सवा सेर गेहूँ ", "शतरंज के खिलाड़ी ", "कफन" आदि कहानियों को मैं पहले ही पढ़ चुकी थी। उनकी कहानियों में मानवीय संवेदना और संस्पर्श का अनुभव पाठक को हुए बिना नहीं रहता। कॉलेज के दिनों में राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित " एक कहानी समानांतर" को पढ़ने का सुयोग प्राप्त हुआ था। उसमें शैलेश मटियानी की " प्रेतमुक्ति " कहानी ने मुझे भीतर से छू लिया था। उसके बाद उनका एक कहानी संग्रह -"पाप मुक्ति तथा अन्य कहानियाँ " को मैं पढ़ गई और उसमें संकलित पाप मुक्ति, नाबालिग, गोपुली गफूरन, कुसुमी, संस्कार, आदि कहानियों ने मुझे सविशेष प्रभावित किया था। प्रेमचंद की ही भाँति शैलेश मटियानी की कहानियों में भी मानव-जीवन की धड़कनें सुनाई पड़ती हैं। क्षुद्र से क्षुद्रतम वर्ग के लोगों के जीवन को यथार्थतः उद्घाटित करते हुए इस वर्ग के लोगों की चेतना में भी जो उच्च मानवीय भाव हैं, उनको मटियानी जी ने अभिव्यक्ति दी है। सचमुच में उन्होंने पराजित मानवता का पक्ष लिया है और लेखक के वाल्मीकि-धर्म का निर्वाह किया है।

अब एक विशेष दिशा में मेरी अध्ययन यात्रा का प्रारंभ हो चुका था। डॉक्टर साहब के मार्गदर्शानुसार शोध-प्रविधि विषयक ग्रंथों तथा कुछेक एतद्विषयक शोधप्रबंधों को देख जाने के उपरांत मैंने उभय लेखकों की कहानियों का अध्ययन प्रारंभ किया और दो-ढाई वर्षों के कठोर अनवरत परिश्रम के उपरांत इस मकाम तक पहुँची हूँ। मैंने अपने शोधप्रबंध को निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया है :---

१- विषय-प्रवेश

२- दलित-विमर्श : कुछ आयाम

३- दलित जीवन पर आधारित प्रेमचंद की कहानियाँ

४- प्रेमचंद की कहानियों में दलित जीवन की समस्याएँ

५- दलित जीवन पर आधारित शैलेश मटियानी की कहानियाँ

६- शैलेश मटियानी की कहानियों में दलित जीवन का चित्रण

७- उपसंहार

**प्रथम अध्याय** '' विषय-प्रवेश '' का है । इसमें प्रारंभ में प्रास्ताविकी के अंतर्गत कहानी के आदि स्रोतों को संकेतित करते हुए तथा प्राचीन कथा तथा आधुनिक कहानी के व्यावर्तक लक्षणों को निरूपित करते हुए आधुनिक कहानी की स्वतंत्र-इयत्ता को स्थापित किया गया है । प्रास्ताविकी में ही ''दलित '' शब्द की उपयुक्तता पर प्रकाश डाला गया है । प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में बहुत संक्षेप में कहानी को परिभाषित करते हुए तथा कहानी और उपन्यास के बीच की विभाजक रेखा को स्पष्ट करते हुए हिन्दी कहानी के विकास को द्योतित करने का हमारा उपक्रम रहा है । उसमें प्रेमचंद पूर्व कहानी, प्रेमचंद युग की कहानी , प्रेमचंदोत्तर कहानी, स्वातंत्र्योत्तर कहानी, प्रभृति शीर्षकों के अंतर्गत हिन्दी कहानी की विकास यात्रा को सुस्पष्ट किया गया है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के अंतर्गत ही नई कहानी, तथा समकालीन कहानी के अभिलक्षणों को चिह्नित किया गया है । कहानी-विषयक इतनी पश्चाद्भू के पश्चात् बहुत संक्षेप में शोध-प्रबंध में विवेच्य लेखकों के हिन्दी कहानी में योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया है । सर्वप्रथम प्रेमचंद के कहानीगत योगदान को निरूपित किया है । यहाँ पर हमने विशेष परिश्रम से प्रेमचंद की २२४ कहानियों को उनके प्रकाशन मास, वर्ष, पत्रिका के साथ देने का उपक्रम किया है । प्रेमचंद की प्रथम कहानी '' दुनिया का सबसे अनमोल रत्न '' सन् १९०७ में जमाना में प्रकाशित हुई थी और उनकी अंतिम

कहानी निधन के उपरांत उनकी प्रथम जन्म तिथि पर सन् १९३७ में जमाना में ही प्रकाशित हुई थी। कहानी का नाम है--- " क्रिकेट मैच "। प्रायः देखा गया है कि उपन्यासकार कहानी-लेखन से प्रारंभ करते हैं और फिर शनैः शनैः उपन्यास की ओर अग्रसरित होते हैं, किन्तु प्रेमचंद जी उपन्यास से कहानियों की ओर आये हैं। यहाँ बहुत संक्षेप में प्रेमचंद के कहानी-साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए उसको मूल्यांकित करने का नम्रप्रयास किया है। इसी अध्याय में शैलेश मटियानी के कहानीगत योगदान को भी निरूपित किया गया है। यहाँ यथासंभव शैलेश मटियानी की तमाम कहानियों की एक सूची भी दी गई है। अध्याय के अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं।

**द्वितीय अध्याय** में दलित-विमर्श के कतिपय आयामों को विश्लेषित करने का उपक्रम रहा है। यहाँ प्रारंभ में दलित जीवन के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए दलितों के विभिन्न वर्गों- अंत्यज या अछूतवर्ग, कर्मिन या शिल्पकार, अपराधजीवी या जरायम पेशावर्ग तथा आदिम जनजातियों को रेखांकित किया गया है। तत्पश्चात् अस्पृश्य जातियों पर थोपी गई धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक निर्योग्यताओं (disabilties) को रखा गया है। दलित विमर्श के संदर्भ में नवजागरण की भूमिका को स्पष्ट करते हुए उसमें " ब्रह्मोसमाज ", " प्रार्थना समाज ", " आर्यसमाज " , " थियोसोफिकल सोसायटी " प्रभृति सामाजिक - धार्मिक संस्थाओं के योगदान को लक्षित किया गया है। यहाँ पर ब्रह्मोसमाज, प्रार्थना समाज तथा आर्यसमाज की अछूत समस्या को लेकर क्या भूमिका रही है उसे भी लक्षित किया गया है। इंडियन सोशल कानफ्रेंस, स्वामी विवेकानंद तथा अन्य महानुभावों के एतद्विषयक दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया गया है। ऐसे महानुभावों में गोपालराव हरिदेशमुख, महात्मा ज्योतिबा फुले, गोपाल गणेश आगरकर, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महर्षि अन्ना साहब कर्वे, श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाड, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गांधी, महर्षि विट्ठलराम सिंदे,

स्वातंत्र्य वीर सावरकर , राजर्षि साहू महाराज, डॉ. बाबा साहब आंबेडकर, कर्मवीर भाउराव पाटील आदि के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें बड़ौदा के महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड तथा कोल्हापुर के महाराजा साहूजी महाराज तथा डॉ. बाबा साहब आंबेडकर के इस दिशा के प्रयत्नों को विशेष उल्लेखनीय समझा जा सकता है। यहाँ पर स्वाधीनता के उपरांत दलितों के उत्थान हेतु जो वैधानिक प्रयत्न किए गये हैं उन पर भी प्रकाश डाला गया है। विभिन्न कल्याण योजनाओं की पर्याप्त चर्चा भी की गई है।

**तृतीय अध्याय** में प्रेमचंद जी की उन कहानियों का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है जो दलित जीवन पर आधारित हैं और जिनमें दलित जीवन की मानवीय संवेदनाओं को केन्द्र में रखा गया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख विमर्शों में दो विमर्शों को रेखांकित किया जा सकता है। इन दो विमर्शों में नारी विमर्श और दलित विमर्श हैं। प्रेमचंद जी के लेखन में प्रारंभ से ही ये दो विमर्श मिलते हैं। इससे यह भली-भाँति प्रमाणित हो जाता है कि लेखक दलित, पीड़ित, शोषित सर्वहारा वर्ग की चिंताओं से अपनी मानवीय दृष्टि के कारण जुड़ा रहा है उसके सरोकार सदैव प्रगतिवादी जीवन मूल्यों को अग्रसरित करते रहे हैं। दलित जीवन पर आधारित जिन कहानियों को यहाँ शोध-अनुसंधान के केन्द्र में रखा गया है उनमें ''ठाकुर का कुआँ'', ''सौभाग्य के कोड़े'', ''मंदिर'',''मंत्र'','' घासवाली '', '' सद्गति '', '' दूध का दाम '', ''लोकमत का सम्मान'', ''बाबा जी का भोग'', ''सवासेर गेहूँ'', ''सभ्यता का रहस्य'',''शूद्रा'',''सती'',''लांछन '',''आगा पीछा '', ''गुल्ली-डंडा'',''देवी'',''मेरी पहली रचना'',''बोडम'', ''कफ़न '', प्रभृति कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। इन कहानियों में ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें दलितों के आर्थिक शोषण एवं सामाजिक उत्पीडन को रेखांकित किया गया है। घटनाओं के घात-प्रतिघात से यह निष्पादित हुआ है कि दलित जातियों के पात्रों में ऊँची जातियों के पात्रों की तुलना

में अनेक प्रकार के मानवीय गुण उपलब्ध होते हैं। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि ऊँचे मानवीय गुणों और आदर्शों पर केवल किसी वर्ग-विशेष का दावा नहीं हो सकता। इनमें कुछेक कहानियों में मंदिर प्रवेश, सामाजिक निर्योग्यताओं, सहभोज एवं अंतर्जातीय विवाह जैसे मुद्दों को केन्द्र में रखा गया है। यह ध्यातव्य रहे कि सन् १९२०-३० के दरम्यिान ये मुद्दे भारतीय सामाजिक-राजनीतिक चिंता के केन्द्र में रहे हैं।

**चतुर्थ अध्याय** में उपर्युक्त कहानियों के आधार पर दलित जीवन की समस्याओं को विश्लेषित करने का उपक्रम रहा है यहाँ पर अस्पृश्यता की समस्या, मंदिर-प्रवेश की समस्या, आर्थिक समस्या, आर्थिक शोषण की समस्या, अत्याचार और अन्याय की समस्या, मानव-अस्मिता की समस्या, यौन-शोषण की समस्या, बेगार की समस्या, शैक्षिक समस्या, अंध-विश्वासों से उत्पन्न समस्याएँ, मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, धर्मान्तरण की समस्या, अमानवीयता की समस्या, गंदगी की समस्या आदि को प्रेमचंद ने कहानियों के माध्यम से उकेरा है। जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है इन समस्याओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों, आंदोलनों तथा हलचलों का प्रतिबिम्ब स्पष्टतया दिखायी देता है।

**पंचम् अध्याय** में शैलेश मटियानी की उन कहानियों का अध्ययन-अनुशीलन प्रस्तुत करने का उपक्रम है जो दलित जीवन पर आधृत हैं। ऐसी कहानियों में ''सतजुगिया आदमी'', ''घुघुतिया त्यौहार'', ''नंगा'', ''लीक'', ''एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट'', ''चिथड़े'', ''गरीबुल्ला'', ''दैट माय फाधर बालजी'', ''पत्थर'', ''फर्क बस इतना है'', ''विट्ठल'', ''चील'', ''प्यास'', ''इब्बूमलंग'', ''मिट्टी'', ''मैमूद'', ''भय'', ''रहमतुल्ला'', ''दो दुःखों का एक सुख'', ''गोपुली गफुरन'', ''प्रेतमुक्ति'', ''महाभोज'', तथा अन्य कहानियों को

लिया गया है । इन कहानियों का अनुशीलन-विश्लेषण दलित चेतना को केन्द्र में रखते हुए किया गया है ।

**छठे अध्याय** में उपर्युक्त कहानियों के आधार पर दलित-जीवन का चित्रण निम्नलिखित मुद्दों को केन्द्र में रखकर किया गया है ---

दलित-जीवन का नया आयाम, भिखारियों और कोढ़ियों का संसार, नगरीय वेश्याएँ, गुण्डों-बदमाशों, जेबकतरों का संसार , जुआरियों-दादाओं का संसार, पुरूष वेश्याएँ, अनाथ बच्चों का संसार, दलितों में उभरती चेतना, दलितों में भय और आतंक, जीवटवाली जुझारू नारियाँ, उच्च मानवीय मूल्य, गहराते अंधकार में प्रकाश की किरणें, अमानवीयता की प्रवृत्ति, अंध-विश्वास और ढोंगी साधु-पीर-मलंग, भयंकर गरीबी-भुखमरी, धर्म-परिवर्तन जैसे मुद्दों को मटियानी जी की कहानियों के माध्यम से उकेरा गया है ।

**सातवाँ अध्याय** ''उपसंहार'' का है । प्रस्तुत अध्याय में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा समग्र शोध-प्रबंध के सार-संक्षेप को रखते हुए प्रबंधगत निष्कर्षों तक पहुँचने का एक संनिष्ठ प्रयास किया गया हे । यहाँ नम्रतापूर्वक शोध-प्रबंध की उपादेयता को, उसकी उपलब्धियों को चिह्नित करते हुए उसकी भविष्यत् दिशाओं को संकेतित किया गया है ।

प्रत्येक अध्याय के अंत में यथासंभव निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है । अध्याय के अंत में संदर्भानुक्रम दिया गया है, जिसमें शोध-प्रविधि के नियमों का आग्रह विशेषतः रखा गया है । शोधप्रबंध के अंत में संदर्भिका (Bibliography) के अंतर्गत चार परिशिष्टों में क्रमशः उपजीव्य ग्रंथों की सूची, सहायक ग्रंथों की सूची (हिन्दी), सहायक ग्रंथों की सूची (अंग्रेजी) तथा पत्र-पत्रिकाओं को अकारादि क्रम में प्रस्तुत किया गया है ।

एम. ए. के उपरांत जब पी-एच.डी. करने का संकल्प किया था, तब इतना तो ज्ञात था कि यह एक बड़ा काम होता है और उसमें संकल्प-प्रतिश्रुतता के साथ जुड़ना पड़ता है, परंतु इस बात का अभिज्ञान नहीं था

कि यह कार्य इतना श्रमसाध्य और समय साध्य होता है । परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि इस परिश्रम-यज्ञ में सारस्वत आनंद की जो उपलब्धि है, उसका आनंद वर्णनातीत होता है ।

हमारी संस्कार परंपरा में गुरू का स्थान मेरूदंड के समान है । गुरू को साक्षात् परब्रह्म का स्वरूप माना गया है । अतः सर्वप्रथम मैं अपने श्रद्धा-सुमन मेरे गुरू शोध परामर्शक डॉ. भगवानदास कहार साहब के चरणों में समर्पित करती हूँ जिनके मूल्यवान निर्देशों के अभाव में यह पहाड़-सा काम संभव नहीं था। डॉ. कहार साहब की उदारता, निष्कपटता, सरलता और शिष्यवत्सलता से सभी परिचित हैं । उन्होंने शोध-प्रबंध के प्रत्येक सोपान पर तरह-तरह से मेरा मार्ग-दर्शन किया है और निराशा और हताशा के समय उत्साहवर्धन भी किया है । अतः अपने अंतर्मन की गहराइयों से मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

मेरे इस महत् कार्य में मेरे माता-पिता-नवसुभाई तथा पार्वती बेन, मेरे पति हेमंतभाई तथा अन्य परिवारजनों का सहयोग रहा है । परंतु ये तो मेरे अपने हैं उनके प्रति आभार व्यक्त करना अनुपयुक्त समझा जायेगा। मेरे अनेक विभागीय मित्रों तथा विश्वविद्यालयीन मित्रों ने मुझे समय-समय पर प्रोत्साहित किया है उनका विशेष स्मरण यहाँ आवश्यक समझती हूँ ।

हिन्दी विभाग के वरिष्ठ अध्यापकों तथा सहयोगियों का मुझे मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है । अतः उन सब के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । इन महानुभावों में हिन्दी विभाग के पूर्वअध्यक्ष प्रोफेसर पारूकांत देसाई, प्रोफेसर अक्षयकुमार गोस्वामी, डॉ. प्रेमलता बाफना, वर्तमान अध्यक्षा डॉ. अनुराधा दलाल, डॉ. वामन अहिरे, डॉ. वी.पी चतुर्वेदी, डॉ. इन्दु शुक्ला, डॉ. ओ. पी. यादव , डॉ. शैलजा भारद्वाज प्रभृति के नाम विशेष उल्लेखनीय समझती हूँ । मेरे सहयोगी मित्रों में डॉ. दक्षा मिस्त्री, डॉ. शन्नो पाण्डेय, डॉ. सरोज वोरा, डॉ. एन. एस. परमार, डॉ. के. वी. निनामा, डॉ. लता सुमन्त, डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय

आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

कला संकाय के पूर्वप्राचार्य (Dean) प्रोफेसर पी. जे. पटेल साहब समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित करते रहे हैं। उनका वरद्हस्त हमेशा मुझ पर रहा है, अतः यहाँ उनके प्रति श्रद्धा का भाव मेरे मन में उमड़ रहा है। उनके प्रति आभार व्यक्त करना ''आभार'' शब्द को छोटा करना होगा।

मेरा यह शोध उपक्रम Minor Research Project के रूप में मान्य हुआ और मुझे १०,००० /- की राशि विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई, अतः सभी संलग्न महानुभावों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

विद्यावाचस्पति (पी-एच. डी.) उपाधि हेतु किया गया शोध-कार्य, वस्तुतः आलोचना-अनुसंधान की दिशा में प्रथम सोपान होता है। प्रतीकात्मक अर्थों में कहें तो यह ''देहरी'' है। मैं परम कृपालु परमेश्वर से प्रार्थित हूँ कि आगे भी विद्याकीय विमर्शों में गतिशील रहूँ। अंत में जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों के साथ विरमती हूँ ---

''यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म-रंगस्थल है,
है परंपरा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है।''

दिनांक
२४ -१२-२००२

विनीत,
(कल्पना एन. गवली)